रचनात्मक चुनौती और
दुःस्साध्य भाषिक कारीगरीः क़िस्सा कोताह

प्रफुल्ल कोलख्यान

जीवन में बदलाव की बयार बह रही है। साहित्य में इस बयार से एक नए तरह का वातावरण बन रहा है। विधाओं की परंपरागत सीमाएँ टूट रही हैं। इधर विधाओं के संदर्भ में यह सामान्य साहित्यिक प्रवृत्ति चलन में आ रही है। इसके अपने कारण हैं। विधाओं के परंपरागत ढाँचों में स्पेस कम हो गया है। उदाहरण जुटाना हो तो विधाओं क सामान्य अनुशासन के कठोरता से पालन के साहित्यिक युग से भी काफी कुछ मिल सकता है, लेकिन वह सब अंततः ठहरेगा अपवाद ही। अभी विधाओं की सीमाओं का अतिक्रमण एक मुखर होती जा रही साहित्यिक प्रवृत्ति का सूचक है। राजेश जोशी इस बात को कुछ इस तरह कहते हैं कि ‘अव्वल तो यह समझाना मुमकिन नहीं है कि सौ सवा-सौ पृष्ठों में फैली यह चीज़ क्या क्या है, हाँ एक हद तक यह बताना आसान है कि यह क्या नहीं है। मसलन यह उपन्यास नहीं है। आत्मकथा नहीं है। शहरगाथा नहीं है और कोरी गप्प भी नहीं है। लेकिन यह इन्हीं तमाम चीज़ों की गपड़तान से बनी एक किताब है। गप्प और गल्प के बीच चली आती रिश्तेदारी का जो बारीक-सा तागा है वो अगर टूट गया तो गप्प का भी बड़ा गर्क़ और गल्प का भी। एक अजीब-सी लत हम सब में याने हर पाठक में चली आती है कि किसी भी चीज़ को पढ़ने से पहले वह जान लेना चाहता है कि वह जिस किताब को पढ़ रहा है, वह क्या है। याने पहले उसकी विधा तय होना चाहिए। अरे भाई विधा तय

हो जाने से क्या हो जाएगा। अब कौन-सी विधा साबुत बची है। कहानी, कहानी की तरह नहीं रही। उपन्यास, उपन्यास की तरह नहीं रहा... और कविता तो ख़ैर...।' कैसा कठिन समय है, इसका संकेत इस बात से मिलता है कि कोई भी चीज 'क्या है' यह बताना मुश्किल है, 'क्या नहीं है' यह बताना आसान है। किसी भी चीज की पहचान के दो आधार होते हैं -- समानता और असमानता। समानता के आधार पर हम पहचानते हैं कि 'वह क्या है' और असमानता के आधार पर पहचानते हैं कि 'वह क्या नहीं' है। इस मुश्किल का संबंध इस तथ्य में है कि हमारे समय में समानता का आधार बहुत तेजी से समाप्त हो रहा है और असमानता का आधार उतनी ही तेजी से उभर रहा है। यह तो हुई समय के तथ्य की बात, लेकिन किस्सा बनते इस समय को समझना है तो तथ्यों से चिपकने की आदत बदलनी होगी।

राजेश जोशी की मानें तो उन में उपन्यास लिखने की ललक सदा रही है। उपन्यास लिखने ललक जितनी ज्यादा रही है उससे ज्यादा यह काम कठिन लगता रहा है। राजेश जोशी के अनुसार, 'उपन्यास लिखना एक कछुआ कर्म है जब कि क़िस्से सुनाना खरगोश की प्रजाति में आता है, थोड़ी दूर तक लंबी-लंबी थलाँग मारी, फिर एक नींद निकाली, नींद खुली तो फिरएकाध चौकड़ी भर ली। ... क़िस्सों का नगर क़िस्सों ने रचा है, उसमें आना है तो तथ्यों को ढूँढ़ने की जिद छोड़कर आओ।' इस कठिनाई के अधिकांश का संबंध संभवतः उपन्यास के ढाँचे से रहा है। राजेश जोशी हिंदी के महत्त्वपूर्ण कवि हैं और कविता के प्रारूप में अपनी बात कह देने में कुशल रहे हैं। इधर कविता का घर में भी जगह की कमी लागातार बढ़ती जा रही है। यथार्थ को पकड़ने, समझने और बरतने का बाइनेरी तरीका अब पूरी तरह ना-काफी ठहर रहा है। सतह पर तैरता यथार्थ चिथड़ा और भुर-भुरा अवस्था में ही संवेदनशील मन को हासिल हो रहा है। यह यथार्थ चिथड़ा और भुर-भुरा होने के साथ ही रवादार भी है। कहीं से भी टूटकर बिखर सकता है और फिर कहीं से भी संपृक्त होकर नये आकार ग्रहण कर सकता है। इस तरह के कठिन कथ्य को कहने के लिए पहले भी एक को अनेक में विभक्त कर अभिव्यक्त किये जाने की शैली अपनाई जाती रही है। बेकन ने जिस आइडोला थिएटरी को सैद्धांतिक रूप में प्रस्तुत किया था उसका इस्तेमाल पहले भी होता रहा है। बहुत दूर न भी जाएँ तो भी 'अनाम दास का पोथा' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अलावे अनाम दास और कौन हो सकता है! राजेश जोशी के 'क़िस्सा कोताह' का गप्पी राजेश जोशी के अलावे कोई और नहीं है। एक भिन्न मिजाज की किताब होने के बाद भी काशीनाथ सिंह की किताब 'काशी का अस्सी' इस सिलसिले में दिमाग में कौंध जाती है। राजेश जोशी की पुस्तक 'क़िस्सा कोताह' इसी शृँखला में एक मजेदार किताब है। खास बात यह कि मजेदार भी है और महत्त्वपूर्ण भी है। मजेदार है अपनी शैली में और महत्त्वपूर्ण है अपने कथ्य में।

तथ्य के पार जाकर कथ्य को हासिल करना एक बड़ी रचनात्मक चुनौती है तो पाठ के मजा से पाठक को जोड़े रखना दुःस्साध्य भाषिक कारीगरी है। राजेश जोशी ने अपनी इस किताब में इस बड़ी रचनात्मक चुनौती और दुःस्साध्य भाषिक कारीगरी के बीच संतुलन बनाने में कामयाबी हासिल की है। इस संतुलन को हासिल करने में वे टेक्स्ट मजबूत शहतीर की तरह काम करते हैं जिन्हें कथा-सूत्र को फैलाने में पतंग की लटाई की तरह व्यवहार में लाया गया है। कुछ दिलचस्प नमूनों पर गौर किया जा सकता है--- 'नरसिंहगढ़ में चारों ओर विंध्याचल की पहाड़ियों का परकोटा था। जब कोयलें बोलना बंद करतीं तो मोर चिल्वाने लगते थे, 'मिट्टी का रावण', 'राजा याने डालडा सरकार' और गप्पी के बारे में 'टेसू का गीत', 'विलनीकरण का अंत और क़िस्सा वेश्या पुलिस का' 'भोपाल का भारत में विलय।' इत्यादि।

राजेश जोशी के शब्दों का इस्तेमाल करें तो यह गपड़तान अपने पाठ में मजेदार है और कथ्य में महत्त्वपूर्ण। समय और समाज के साथ साहित्य के नये सलूक और बरताव की सूचना लेकर आनेवाली किताबों की शृंखला में एक दिलचस्प पाठ है। यह उम्मीद की जानी चहिए कि रचनात्मक चुनौती और दुःस्साध्य भाषिक कारीगरी को साधनेवाली यह किताब पाठकों को जरूर भायेगी।

क़िस्सा कोताह

राजेश जोशी

कीमतः250/-

पृष्ठ सं.170

राजकमल प्रकाशन, 2012